CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८-९

जीवन-परिमल

१९९० ७–९

— विषय —

प्र० विमलाजी ठकार का शब्दाङ्कित चिन्तन : अध्यात्म– समग्र जीवनशील (—तदन्तर्गत मानवीय जीवन-विकास एवं राष्ट्र तथा विश्व के हित—) के सन्दर्भ में, तदनुरूप एवं आनुषङ्गिक समानधर्मी विशिष्ट चिन्तन

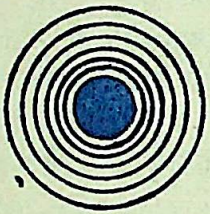

उन्मुखता और संवेदनशीलता का व्यक्ति को समग्रता में स्पन्दित होना ही प्रेम है। वही मनुष्य-जीवन का गति-तत्त्व है।

प्रेमहीन जीवन शुष्क, रूखा-सूखा होता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग को, अणु-रेणु को प्रेम से ओत-प्रोत होने देने में ही जीवन की सार्थकता है।

प्रेम यानी जीवन की प्रयासरहित गति। एक नयी ऊर्जा एक नयी प्रज्ञा भीतर जाग उठती है। उसके आलोक में कर्म अपने आप होते रहते हैं। वहाँ कर्मों द्वारा कुछ पाने का प्रयोजन नहीं रहता। जीवित रहने और कर्म का माध्यम बनने में ही सन्तृप्ति है।

प्रेम की परिपूर्ति अभिव्यक्ति में है,
जिज्ञासा की परिपूर्ति सत्यशोधन में।

[विमलवाणी : 'पावक-स्फुलिङ्ग' में से]

सत्य करुणा प्रेम

सख्य सहयोग सहजीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूहानी मुसकान

हर नज़र के जलवे में रोशन हो जब,
तेरा पर्दे में छिपना है किस काम का ?

हर जिगर की धड़कन में बोलते हो जब,
ख़ामोशी का बहाना है किस काम का ?

इस सूरज की रौशनी में तेरा नूर है
औ चन्दा की चाँदनी में तेरा हुस्न है।
ज़र्रे-ज़र्रे की रूहानी मुस्कान में
तेरी-मेरी महब्बत का अंजाम है॥

* * * *

महब्बत का मज़ा वो क्या जानें जो बोझ खुदी का ढोते हैं।
इश्क़ का मज़ा तो वो जानें जो घोल खुदी को पीते हैं॥
महब्बत जतलाने की है बात नहीं, होश है किसे, जो जतलाये।
महब्बत करने की भी बात नहीं, हो जाती जिसे वही जाने !

महब्बत का हो जाना बख्शा जाता है जिन्हें,
नशा मौते-जाम का पिलाया जाता है उन्हें॥

* * * *

प्रेम मनुष्य के कर्म, ज्ञान या भक्ति का परिणाम नहीं, वह पुरुषार्थ-जन्य नहीं है। प्रेम तो जीवन की एक अवस्था की सुरभि है। प्रेम में द्वैत का सम्पूर्ण विलय हो जाता है। वहाँ द्रष्टा नहीं, दर्शन नहीं, दृश्य भी नहीं; भोक्ता नहीं, भोग्य नहीं; और वहाँ अचल (जड़) कुछ भी नहीं।

* * * *

धर्म की तत्परता, अर्थ की समृद्धता, काम की उत्कटता एवं मोक्ष की तटस्थता अर्थात्—तत्परता + समृद्धता + उत्कटता + तटस्थता—ये पञ्चम पुरुषार्थ के उपादान हैं। चारों पुरुषार्थ इसमें अपना सर्वस्व उँडेल देते हैं। इसीलिये प्रेमी के जीवन में दक्षता का कौशल छलकता है, ऐश्वर्य की शान झलकती है, उत्कटता की पराकाष्ठा उमड़ती है, एवं तटस्थता का सन्तुलन प्रसाद बन कर सर्वेन्द्रियों में से झरता रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकट को अवसर में बदल दें !

(सदस्य, राष्ट्रीय-एकता-परिषद्) दि० ५-८-९० —विमला

सीधे-सादे असत्य की तुलना में आधे सत्य ज़्यादह ख़तरनाक़ होते हैं। यह तथ्य है कि शहरी (आबादी) ने करोड़ों निरक्षर ग्रामीणजनों को राजनैतिक रूप से छला है, आर्थिक रूप से उनका शोषण किया है, और धर्म के नाम पर मानसिक रूप से उन पर आधिपत्य जमाया है। सभी कुटीर उद्योग और ग्रामीण धन्धे गाँवों से छीन लिये गये हैं और उन्हें उपनिवेश का दर्जा दे दिया गया है, यह भी तथ्य है।

सही कानून बना कर यह घोर अन्याय दूर किया जा सकता है; न कि ग्रामीण और नागर (शहरी) जनता के बीच नई खाईं खोद कर। ग्रामविरोधी और कृषिविरोधी अर्थनीति से देश की हानि हुई है। वर्तमान सरकार सचमुच इस रुख को बदलना चाहती है, और जन-अनुकूल, कृषि-अनुकूल अर्थनीति भी खड़ी करना चाहती है। बजट का ४९% भाग गाँवों की आवश्यकताओं के लिए निर्धारित करने की घोषणा करके एक निर्णायक कदम उठाया जा चुका है। अष्टम योजना का मसौदा लोकसभा के वर्षाकालीन सत्र में रखा जाने वाला है। अनुसूचित जन-जातियों और अनुसूचित जातियों की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये किये जाने वाले उपायों के बारे में प्रधानमन्त्री की बारम्बार घोषणायें सरकार की नेकनीयती का पर्याप्त प्रमाण हैं।

पंचायतराज से ग्रामीण जनता को राजनैतिक रूप से अपने दावे की रक्षा करने का, और स्वशासन के अपने अधिकार का प्रयोग करने का सामर्थ्य मिलेगा। इस सम्बन्ध में विधेयक (Bill) पर चर्चा होगी और जल्दी ही कानून बनाया जायेगा।

छोटे और मँझले आकार के उद्योगों के प्रति नया रुख़ इस बात का एक और प्रमाण है कि सरकार अर्थनीति को प्रजातान्त्रिक बनाने के लिये सन्नद्ध है।

अतएव इस प्रकार के युद्ध-नारे की क्या ज़रूरत है—"शहरी बदमाशो ! हमें अकेले छोड़ दो !" हम यह क्यों न देखें कि संयुक्त-सोवियत-संघ में किस प्रकार संघर्ष और मुकाबला उकसाये बिना सम्पूर्ण उत्क्रान्ति हो रही है। जब विधि-निर्माण और संवैधानिक संशोधनों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा गहरे परिवर्तन लाये जा सकते हैं तो फिर कड़वाहट, क्रोध और घृणा का वातावरण क्यों खड़ा किया जाय ?

या कि, आगामी नारा, रैली, राष्ट्रव्यापी आन्दोलन, व्यक्तिगत अहं को सन्तुष्ट करने के लिये–राजनैतिक चाल हैं। क्या यह प्रतिशोध के लिये नया अस्त्र है ? क्या यह सत्ताधारी पक्ष को शहरी और ग्रामीण में बाँटने की एक नयी व्यूहरचना है ? जिससे कि देश के नेतृत्व यानी प्रधानमन्त्री को बदलने के लिये दबाव डाला जा सके ?

मुझे आशा है कि गाँव की जनता अब किसी के भी हाथों में आकर सत्ताधारित राजनीति का माध्यम नहीं बनेगी, सत्ता के भूखों के हाथों का खिलौना या 'गिनी पिग' (आज़माने का माध्यम) बनने में ग्रामीण लोग इन्कार करेंगे।

दूसरी ओर, शहरी बुद्धिजीवी लोग जो कि पश्चिम के आर्थिक सिद्धान्तों पर पले हैं, उन्हें ग्रामीण जागृति की चुनौती का यथार्थवादी रीति से सामना करने की ज़रूरत के प्रति जागरूक होना चाहिये। अच्छा हो कि—

• वे गांधी अर्थनीति यहाँ तक कि गांधी-दर्शन का अध्ययन करें और सरकार को शान्तिपूर्ण व शालीन ढंग से राजनैतिक व आर्थिक सत्ता के हस्तान्तरण को क्रियान्वित करने में मदद करें, न कि पश्चिम से उधार लिए हुए आर्थिक सिद्धान्तों के नाम पर रोड़े अटकायें और अवरोध पैदा करें।

• वे विज्ञान, तकनीक, और सभी उपलब्ध ऊर्जाओं को कृषि, ग्रामोद्योग, पशुपालन और दुग्ध-व्यवसाय के साथ जोड़ने का मार्ग दिखा कर मानव को उत्क्रान्ति लाने में ऐतिहासिक भूमिका अदा कर सकते हैं।

• वे शिक्षक की भूमिका निभा सकते हैं और ग्रामीणों को वैकल्पिक तकनीक, ग्रामीण-इंजिनियरिंग वैकल्पिक ऊर्जाओं के उपयोग, सिंचाई की 'ड्रिप'-पद्धति इत्यादि सीखने में मदद कर सकते हैं।

• वे निरक्षरता को दूर करने का अभियान, भुखमरी व बेकारी को हटाने का आन्दोलन, स्वास्थ्य आन्दोलन आदि चला सकते हैं, जिससे ग्रामीण जनता में अभिक्रम और आत्मविश्वास जागे।

जनता की शक्ति को रचनात्मक रीति से चालित करने का कैसा सुनहरा अवसर सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं के लिये है ? भारतीय मानस में पड़ी हुई सहज धर्मनिरपेक्ष वृत्ति को सक्रिय, सघन बनाने और चालित करने का क्या सुन्दर अवसर है ? मानवेन्द्रनाथ राय-वादी, लोहिया-वादी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और सम्पूर्णक्रान्ति में जयप्रकाश नारायण के सहयोगी सभी के लिये यह कैसा ईश्वर-प्रदत्त अवसर है कि वे मानव अधिकार, नागरिक स्वतन्त्रता, अर्थनीति में लोकतन्त्र लाने, और प्रामाणिक लोकतन्त्र के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन संगठित करें और इनके आशय समझायें।

महात्मा गांधी ने हमें संकट को शुभ अवसर में बदलने का मार्ग दिखाया है। उन्होने हमें सामूहिक तनाव के मन्थन में से सर्जनात्मक ऊर्जा निकालने का उपाय दिखाया है। जीवन की एक पद्धति के रूप में शान्ति की भी अपनी व्यूहरचना होती है जो प्रेम और करुणा से बनती है। सहजीवन मैत्री और सहयोग के अभिप्रेरणों (motivations) को एक साथ सामाजिक आर्थिक उत्क्रान्ति की प्रक्रिया में जोतना होगा। विधि-निर्माण और संवैधानिक संशोधनों में अपने आप में जनता की वृत्तियों को बदलने की क्षमता नहीं है। हमें मालूम होना चाहिये कि—

- भारतीय सामन्तवादी व पूंजीवादी मानस में से समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और प्रजातान्त्रिक मानस की ओर बढ़ रहे हैं;
- करोड़ों निरक्षर भारतीय लोग जो गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं, उन्हें लोकतन्त्र की ओर शान्तिपूर्ण, परिष्कृत और मानवोचित रीति से आगे बढ़ने के लिये राज़ी करना होगा।
- यदि उन्हें हिंसात्मक तरीके इस्तेमाल करने के लिये उकसाया जाय और ईर्ष्या तथा घृणा की भौंडी अभिप्रेरणाओं की ओर प्रवृत्त किया जाय, तो इन करोड़ों जनों का नैतिक अधःपतन, भारतीय आध्यात्मिकता, संस्कृति और उत्कृष्ट सौन्दर्यबोध का समूल विनाश हो जायेगा। शहरी शिक्षितों का नैतिक अधःपतन, उनके जीवन की भ्रष्ट रीतियाँ,—जिन्हें उन्होंने छल योजना से विकसित किया है,—क्षेत्रीय स्तर पर विखण्डीकरण और मानसिक स्तर पर विभाजन, जो उन्होंने धर्म और राजनीति के नाम पर खड़ा किया है, इन सबने संभवित विनाश का स्वाद चखा दिया है।

इस प्रकार यह संकट वास्तव में सांस्कृतिक है, और आनुषङ्गिकरूप से राजनैतिक या आर्थिक है। इससे पहले कि ईर्ष्या, घृणा, संघर्ष और हिंसा की ज्वालायें पूरे देश को घेर लें, हमें जाग जाना चाहिये।

[आबू में दि० ५-८-९० को लिखित मूल अङ्ग्रेजी लेख से अनूदित]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले सत्ता-परिवर्तन, अब व्यवस्था-परिवर्तन

आचार्य श्री यशवन्त शुक्ल

गुजरात-बिरादरी ने आचार्य श्री राममूर्तिजी की अध्यक्षता एवं पूज्या विमलाजी ठकार की उपस्थिति में दि० ३-४ जुलाई को दो दिन की विचारगोष्ठी 'व्यवस्था-परिवर्तन'-विषय पर रखी थी। इस गोष्ठी का मुख्य झुकाव सत्ता और व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण की ओर था।

विकेन्द्रीकरण को व्यवहार में लाते समय इतना समझ रखना होगा कि पृथ्वी के उपखण्ड जैसे अपने विशाल, वैविध्यपूर्ण एवं रंग-बिरंगे देश की अखण्डता सिद्ध करने के लिए अमुक मात्रा में विकेन्द्रीकरण की भी जरूरत रहेगी; जैसे कि सुरक्षा, विदेशनीति, विदेशों के साथ व्यापारी सम्बन्ध और संयोजन कुछ केन्द्रीय व्यवस्थाओं को अनिवार्य बनाता है। जो समवायी सिद्धान्त प्रान्त रचना के बारे में संविधान-पूर्वक अपने राष्ट्र ने स्वीकार किया है, जिसे हम आज तक निभाते आये हैं, उसे चुनौती देने की बात नहीं है। किन्तु जिस प्रकार प्रदेश स्वायत्तता की मात्रा बढ़ाने का आग्रह करते हैं, तब भी केन्द्र ने दिन-प्रतिदिन अपनी सत्ता बढ़ाते-बढ़ाते प्रदेशों को वास्तव में 'सूबे' बना डाला है—यह प्रक्रिया रोके बिना प्रदेश स्वायत्त नहीं हो सकेंगे। उसी प्रकार लोकतन्त्र में व्यक्ति यदि आत्मगौरव एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य नहीं भोग सकेगा तो यह लोकतन्त्र अर्थहीन हो जायेगा।

शासन-व्यवस्था में व्यक्ति (सामान्य जन) की आवाज़ सुनाई दे एवं उसका हित संभाला जाय तो ही जनता लोकतन्त्र का अनुभव कर सकती है। सत्ता और व्यवस्था के केन्द्रीकरण के कारण भारतीय नागरिक ऊपरी-ऊपरी स्वराज का अनुभव करता है, और कहता-मानता है कि हम स्वतन्त्र-लोकतन्त्र में हैं; फिर भी वास्तव में पाँच वर्ष में एक बार चुनावों में मतदान करने के सिवा शासन या व्यवस्था के किसी भी मामले में नागरिक की न तो आवाज़ सुनाई देती है, न उसका 'भाव' पूछा जाता है। नागरिक-सामान्य की कहीं कोई पूछ नहीं, परवाह नहीं। 'राज' (शासन-व्यवस्था) स्वयं को लोकशाही और कल्याणराज कहलाता है तब भी यह हालत है। सत्ता व व्यवस्था के अत्यधिक केन्द्रीकरण का ही यह परिणाम है।

सौभाग्य से केन्द्र में, और कुछ प्रदेशों में भी जनतादल का शासन स्थापित हुआ है। गुजरात में मिली-जुली सरकार है, तो केन्द्र में लघुमती सरकार है। पूरी बहुमती दिखा पाई हुई पक्षीय शासन-व्यवस्था को परिवर्तन लाने की जितनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुकूलता रहती है, वैसी अनुकूलता जनतादल के केन्द्रीय शासन को नहीं है। उसे अपने ठेकेदारों का और कभी विपक्षों का रुख सँभालते हुए बड़े नाजुक ढंग से कदम उठाने हैं। सन्तुलन डगमगाये नहीं यह देखने में उसकी शक्ति विशेष रूप से खर्च हो रही है। फिर भी पिछले चुनाव के बाद जो परिस्थिति सामने आई थी उसके पीछे लोगों (जनता) में परिवर्तन की गहरी माँग ही काम कर गई—यह निर्विवाद है। काँग्रेसी शासन अपने भ्रष्टाचार, लापरवाही, गैरजिम्मेदारी और शिथिलता के कारण जनता के दिल से उतर गया था। कांग्रेस-ई को (किसी प्रकार) सबसे बड़ा अल्पमतीय पक्ष (विरोधपक्ष) बनने का लाभ तो मिला किन्तु राज्य-शासन की जिम्मेवारी सँभालने की नैतिक हिम्मत उसमें नहीं थी; क्योंकि उस हालत में जनता में उसके और भी 'बेकार' बनने की परिस्थिति खड़ी होती।

जो सरकार बनी है वह तात्त्विक अर्थ में पहले के शासन की अपेक्षा भिन्न है, और अधिक अच्छी है, बेहतर है—यह सिद्ध करने का कठिन काम अभी बाकी है। हालाँकि चुनाव-घोषणापत्र में जो वचन जनतादल ने जनता को दिये थे—वे पालने की नीयत शासन की अवश्य है, ऐसी प्रतीति होती है; किन्तु नौकरशाही के नागपाश में से उसे रास्ता निकालना होगा। फिर भी, श्री वी० पी० सिंह के नेतृत्व-वाली केन्द्रीय सरकार और जनतादल वचनबद्ध सरकार की तरह लोकाभिमुख कार्यों में प्रवृत्त हुए हैं—यह एक आशास्पद घटना है। इस सरकार को काम करने का अवसर मिले और जनता सच्चा स्वराज प्राप्त करे—इसके लिये उसके हाथ मजबूत करने का उपाय लोक-हितैषियों को करना चाहिए।

आचार्य श्री राममूर्त्तिजी स्वयं पक्षवादी राजनीति में शामिल नहीं हैं। वे वाराणसी के (प्राचीन) 'क्वीन्स कॉलेज' में इतिहास और समाजशास्त्र के (भू० पू०) अध्यापक रहे। फिर शीघ्र ही स्वातन्त्र्य-संग्राम में शामिल हो गये। सर्वदा देश की जनता का श्रेय चाहने के नाते १९५४ में आचार्य विनोबाजी के भूदान-आन्दोलन में शामिल होकर देश भर में भ्रमण किया। फिर बिहार में जन-सेवा के लिए आसन जमा कर बैठे; बिहार-शान्तिसेना के प्रमुख अग्रणी रह कर जड़ें सींचते रहे। जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण एवं विनोबाजी के बीच विचारभेद हुआ तब जयप्रकाशजी की रीति से चिन्तन करने वाले आचार्य राममूर्तिजी उन्हीं के साथ रहे जे० पी० के अन्तिम क्षण तक। जब वी० पी० सिंह ने (जयप्रकाशजी की धारा के अनुरूप) जन-हित में कार्य प्रारम्भ किया तब से आचार्य जी को पितृ-तुल्य विश्वास एवं समादर से देखते रहे, जो अब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक वैसा ही कायम है। जनतादल की रचना में आचार्यजी का योगदान है; किन्तु फिर भी वे "आचार्य" ही बने रहे; पक्षीय राजनीति की 'कण्ठी' नहीं बाँधी, और राष्ट्रीय-राजनीति छोड़ी भी नहीं।

भारतीय संस्कृति के लिये उनके हृदय में असाधारण समादर है और भारतीय जनता के लिए असाधारण प्रेम। शायद इसीलिये—१९८६ की राष्ट्रीय शिक्षण नीति (जो 'नयी शिक्षण नीति' कहलाती है)-की विषमतायें दूर करने के लिए जो शैक्षणिक पुनरावलोकन-समिति केन्द्र-सरकार ने नियुक्त की है उसका अध्यक्ष आचार्यजी को बनाया गया है। हम आशा रखें कि 'ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड'—जो अभी सही माने में प्रारम्भ ही नहीं हुआ है और 'नवोदय-विद्यालय' जो राजीव-शासन की विपरीत देन है—उनमें राममूर्तिजी की समिति मूलगामी परिवर्तन लायेगी और सच्ची शिक्षणनीति गढ़ेगी; ऐसी शिक्षणनीति—जो वी० पी० की सरकार द्वारा घोषित 'काम का अधिकार' अमल में ला सके; और महात्मा गांधी के आत्मा को आनन्दित कर सके। हालाँकि आचार्य राममूर्तिजी हँसते-हँसते कहते हैं कि "कोठारी-कमिशन के अहवाल में जो शैक्षणिक कार्यक्रम एवं नीति-विधान हाजिर हैं उतने आगे बढ़ने की हमारी महेच्छा नहीं है।"

पू० विमलाजी द्वारा भूदान-यज्ञ के समय की गयी सर्वोदयी समाजसेवा तो प्रसिद्ध है ही, फिर तभी से उन्होंने जो साधना-मार्ग पकड़ा वह मानवीय चेतना के विकास का मार्ग है। अन्य प्रकार से कहें तो वह आध्यात्मिक जीवनसाधना है। किन्तु इससे वे समाजविमुख नहीं हुई, और आँख के सामने जो कर्तव्य पड़े उनकी अवगणना कभी की नहीं पंजाब की समस्या को सुलझाने के लिए नागरिक भूमिका के रूप में उन्होंने 'इन्सानी-बिरादरी' को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया था, फिर गुजरात की युवा-चेतना को सहकार, सहजीवन, सहयोग और सख्य का मार्ग दिखाने के लिये 'गुजरात-बिरादरी' स्थापित की। गुजरात-बिरादरी के प्रायः पाँच सौ प्रशिक्षित युवक ग्राम-सम्पर्क करते रहे हैं, अपना विकास (आन्तरिक) करते रहे हैं। अभी जून में विमलाजी निर्भय रीति से काश्मीर भी हो आईं; कोई 'अङ्गरक्षक' साथ रखे बिना सीधे काश्मीर की जनता से सम्पर्क करके उनकी भावना एवं समस्या का अध्ययन किया।... उनकी भावना है कि श्री वी० पी० सिंह सचमुच लोकहित के लिए नये परिवर्तन लाने को प्रयत्नशील हैं।

पर यह परिवर्तन क्या होगा? उसका उद्देश्य क्या होगा? उसका स्वरूप क्या होगा? 'व्यवस्था-परिवर्तन-गोष्ठी की चार बैठकों में तद्विदों (विशेषज्ञ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिन्तकों) ने इस विषय पर परामर्श किया, आचार्य राममूर्त्तिजी ने प्रत्येक बैठक के समापन-भाषण किये, एवं श्री विमलाजी ने उपसंहारात्मक प्रवचन में इस गोष्ठी में हुए चिन्तन की दिशा-गति का विस्तार किया। इस प्रकार यह गोष्ठी हृदय-सन्तर्पक बनी।

आचार्य राममूर्त्तिजी मानते हैं कि युगों-युगों में विकसी हुई भारतीय संस्कृति ने भारतीय जन की व्यक्तिमत्ता की एक विशिष्ट छवि उभारी है। युगों तक भारतीय शासन-तन्त्र ने किसी के व्यक्तिजीवन में हस्तक्षेप नहीं किया, इसलिए भारतवासी की एक विशिष्ट चेतना परखाई है। इस व्यक्तिचेतना को फैलने का क्षेत्र मिले ऐसी राज्यव्यवस्था आधुनिक सन्दर्भ में धरती पर लाना आज का युगधर्म है। यदि 'अन्तिम मनुष्य तक' (unto this last) स्वराज के लाभ पहुँचाने हों तो शासन का स्वरूप नये सर से सोचना—तय करना होगा। गाँधीजी का यह सपना था।

इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक मनुष्य हाथ-पांव हिलाता हो, चेतना का विस्तार करता हो, उपयोगी सामाजिक उत्पादन-कार्य में प्रवृत्त हो, और देश-बन्धुओं के साथ मिल-जुल कर जीता हो। वह भूखा-प्यासा-नंगा न हो, बेघर न हो, उसके सिर पर छत हो, घर-द्वार हो, उसके आरोग्य-स्वास्थ्य की संभाल हो, पूरी सुरक्षा हो, उसके बच्चों के लिए सच्चे शिक्षण की पूरी-पूरी व्यवस्था हो, सुविधा हो;—ऐसे मनुष्य में ही आत्मविश्वास खिल सकता है, वह आत्मगौरव का अनुभव कर सकता है, उसे ही जीवन सार्थक प्रतीत हो सकता है।

ऐसा मनुष्य स्वयं शरीरश्रम करने को तैयार रहेगा और अपने परिवेश में कोई न कोई उत्पादक प्रवृत्ति ढूंढ़ निकालेगा। जिसे स्वस्थ शरीर मिला है ऐसे प्रत्येक नागरिक को अपने योग्य काम करने (रोज़ी-रोटी कमाने) का स्वनिर्मित अधिकार है। राज्य अपने व्यवस्था-तन्त्र को अनुकूल बना कर नागरिक को अपना रोज़गार खोजने में सहायक बनता है, कभी रोज़गार के मौके खड़े कर देता है; पर मनुष्य को बेकार रख कर, फिर बेकारी-भत्ता देकर गरीब देश की तिजोरी तो खाली नहीं ही कर सकता। पर हकीकत ऐसी बनी है कि अपने देश की अस्सी करोड़ जनता में कम से कम सात-आठ करोड़ मनुष्य बेकार हैं। काम करना चाहते हैं पर रोजगार के बिना परेशान हैं। आचार्यजी मानते हैं कि व्यवस्थातन्त्र की दिशा बदले बिना या समाजरचना बदले बिना दृष्टि-परिवर्तन नहीं साधा जा सकेगा। उस परिवर्तन का रूप-रंग कैसा हो यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पष्ट करना होगा। सरकार वह परिवर्तन नहीं ला दे सकेगी। स्वैच्छिक या स्वयंसेवी संस्थाओं को ही मनुष्य और कार्य के बीच सेतु बनना या ऐसी सेतु-रूप संस्थाओं का निर्माण करना होगा।

इसीलिए गुजरात-बिरादरी द्वारा आयोजित द्विदिवसीय संगोष्ठी की चारों बैठकों के विविध विषय-शीर्षकों के अन्तर्गत स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान का खास उल्लेख किया गया, ऐसी सुख्यात संस्थाओं के अग्रणी प्रतिनिधियों को इस संगोष्ठी में भाग लेने के लिए खास निमन्त्रित किया गया था।

इसके पीछे दृष्टि यह थी कि सरकार स्वयं पूरा-पूरा परिवर्तन नहीं ला सकती। सरकार के लिये भी लोक-सम्पर्क का एवं लोगों की इच्छा व समस्या परखने का माध्यम स्वयंसेवी संस्थायें ही होती है। सरकार के प्रचार-माध्यम लोकसम्पर्क के लिए पर्याप्त नहीं। भागीदारी वाला लोकतन्त्र भी स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से ही सिद्ध हो सकता है।

गुजरात की बात करें तो पूरे देश के मुकाबले गुजरात में लोकसंस्थायें, रचनात्मककार्य-संस्थायें या स्वैच्छिक-स्वयंसेवी संस्थायें सबसे अधिक सजीव और कार्यक्षम हैं। इसका श्रेय है महात्मा गान्धीजी को एवं उनके निष्ठावान् साथियों को, कि गुजरात उनका प्रारम्भिक कार्यक्षेत्र बना, और गुजरात ने उनकी आवाज उठा ली। गान्धीजी लोकशक्ति जगाने वाले नेता थे, इसलिए गुजरात में रचनात्मक कार्य की विविध संस्थायें अस्तित्व में आयीं। आज भी गुजरात स्वैच्छिक-संस्थाओं का स्वर्ग माना जाता है। चार सौ से भी अधिक सजीव रचनात्मक-कार्य संस्थाओं से समृद्ध है गुजरात। इन संस्थाओं ने अपने पुण्यप्रताप से गुजराती जनता की श्रद्धा बनाये रखी है और उसकी मानसकाया का (अदृष्ट रूप से) गठन किया है। इसलिए इस गोष्ठी के लिये गुजरात की भूमि का चयन सर्वथा उचित रहा।

व्यवस्था में परिवर्तन लाने का काम बहुत कठिन है यह स्वीकार करना ही होगा। सौ साल तक जमे रहे ब्रिटिश-राज के अमले ने जिस तन्त्र का निर्माण किया उसे स्वराज्य मिलने पर भी ज्यों का त्यों रखते हुए उसका ही विस्तार किया गया; इसलिए अब कहना पड़ता है कि डेढ़ सौ सालों से पड़ी आदतों का ही नहीं, इतने लम्बे अर्से से जड़ जमाती आयी अपेक्षाओं, मनोदशाओं और रचनाओं को बदलने का सवाल सामने है। स्वराज-संग्राम के समय जिन्होंने महात्मा गाँधीजी का उत्तम साथ दिया था वे लोग भी ब्रिटिश तन्त्ररचना की पद्धति में ऐसे धँस गये कि उससे बाहर निकलना उन्हें रुचता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं। वायसराय का भवन संग्रहस्थान बने—ऐसा गाँधीजी ने भले चाहा भी हो किन्तु 'राष्ट्रपति भवन' का मोह बड़े-बड़ों के दिल-दिमाग से उतरा नहीं। आज जिन वैभवी आवासों में देशनेता रहते हैं, लाखों-करोड़ों व्यय करते हैं, विदेश-यात्रायें करते हैं और गरीब देश की गरीबी बढ़ाते जाते हैं—उन्हें वापस लौटने को कौन कहे ? यह तो एक उदाहरण है। अपनी नौकरशाही भी गरीब भारतवासियों के ही बूते पर जो शान-शौकत का ठाठ भोगती है उसका देश की वास्तविकता के साथ कोई मेल नहीं।

इसलिये जड़ से शिखर तक की तन्त्ररचना बदले बिना, किफ़ायत किये बिना, सादगी और संयमी व्यवहार व रहन-सहन में लौटे बिना 'लोक' और 'तन्त्र' के बीच सेतु बनाया नहीं जा सकेगा। इस परिवर्तन के लिये शासकों का मानसिक सहकार नहीं मिलने वाला है। लोक-नजर के ताप से ही अब परिवर्तन लाया जा सकेगा।

नौकरशाही जो बेकाबू होकर जनता को लूट कर अपना घर भरने में प्रवृत्त है और रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार आसमान पर चढ़ा है—उसे 'रुक जाओ ! ठहरो !' कहने की हिम्मत अब स्वयंसेवी संस्थायें और स्वयं जनता ही दिखाये तभी काम बनेगा। जहाँ-तहाँ थोड़ी-बहुत उछलकूद करने या पेबन्द लगाने जैसे उपायों से आमूल परिवर्तन नहीं लाया जा सकेगा। जो सही-समुचित शासन प्रणाली का अनुसरण करने में नाराज़ हों—उन्हें घर बैठा देने जितना दम (कूवत) शासन-तन्त्र में होना ही चाहिये। किन्तु बुरी भी संगठित ताक़त के आगे शासक झुक जाते हैं, और शासनतन्त्र व नौकरशाही मिलकर जनता को 'बिचारी' 'दीन-हीन' बना डालते हैं। इस हालत में यदि स्वैच्छिक संस्थायें जनता को उसी के हित के लिये संगठित करके शासन-तन्त्र को पाठ पढ़ायें—अपनी ताक़त परखायें तो नौकरशाही को अपना सच्चा सन्दर्भ समझ में आ सकता है। पर इसके लिये तन्त्र-रचना बदलनी ही होगी।

सौभाग्य से पंचायती राज को सुयोग्य गढ़न देने का चक्र गतिशील हुआ है। राजीव सरकार ने भी इसके लिये विधेयक बना कर संसद के सामने रखा था पर तब वह पारित न हो सका था। अब उस विधेयक की त्रुटियाँ दूर करके सच्चा ग्रामस्वराज धरती पर आ सके ऐसी ग्रामपंचायतें और उनके ऊपर के स्तर गढ़ने की हिलचाल हो रही है। केवल पैसा लुटा कर गाँव के असामाजिक तत्वों को निहाल करने वाली पंचायत-व्यवस्था हमें नहीं चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस संगोष्ठी ने तात्त्विक ग्राम स्वराज पर बल दिया। गाँव के प्रत्येक प्रौढ़-वयस्क व बालिग व्यक्ति का समावेश करने वाली ग्रामसभा ग्रामपंचायत में सर्वोपरि हो और चुनी हुई ग्रामपंचायत उस ग्रामसभा की कार्यकारिणी के नाते काम करने वाली हो, जरूरत पड़े तो ग्रामसभा में ग्रामपंचायत को बर्खास्त करने की सत्ता हो; पंचायत को गाँव के हित में 'कर' लेने की सत्ता हो; गाँव की गोचर भूमि, विद्यालय, सड़क, पानी संचित रखने के साधन आदि पंचायतों के अधिकार में हों; गाँव के झगड़े वहां ही निपटाने की लोक-अदालत की सत्ता भी पंचायत में हो—तो प्रत्येक व्यक्ति तक स्वराज का सुख पहुँच सकता है, इस तरह विकेन्द्रित लोकतन्त्र का निर्माण हो सकता है।

इतना सिद्ध करना असम्भव नहीं है, किन्तु इसके लिये गान्धी-दर्शित रचनात्मक मार्ग की ओर बढ़ना होगा। तभी भारतीय जनता के विकास के योग्य साधनों का निर्माण हो सकेगा, तभी प्रत्येक व्यक्ति का गौरव सुरक्षित रह सकेगा। यही रचना आगे जिलास्तर तक विस्तृत होने पर लोकतन्त्र के ठोस घटकों का निर्माण हो सकता है। आवश्यकता पड़े तो संविधान में समुचित सुधार करके भी विकेन्द्रित लोकतन्त्र को धरती पर लाने के लिये स्वैच्छिक संस्थाओं को आगे रखकर राज्य को प्रवृत्त होना चाहिये।

स्वराज की सरकार ब्रिटिश सरकार जैसी परायी तो नहीं है न! अपने लोकहित के कार्यों में सरकार को भी स्वैच्छिक संस्थाओं का सहकार मिलना ही चाहिये। पर ये संस्थायें भी शुद्ध कल्याणकारी योजनाओं को ही सहयोग देंगी।

इस तरह जो जनमानस विकसित होगा वह तात्त्विक लोकशाही के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दे सकेगा। आज तो एक वैधानिक प्रकार के लोकतन्त्र के जाल···ने ही लोकजीवन को रूँध रखा है।

उक्त पंचायती राज की भूमिका वाली व्यवस्था में स्तर-स्तर पर लोक-सरकार को व्यक्त करने वाली पद्धतियाँ अपनानी चाहियें, जिससे प्रत्येक उगते-बढ़ते बालक को शिक्षण मिल सके, पर्यावरण की शुद्धि सँभाली जा सके, आरोग्य और खुशहाली लोकसहकार तथा लोकशिक्षण से सिद्ध हो; प्रत्येक वयस्क व सशक्त व्यक्ति के लिये किसी न किसी उत्पादक प्रवृत्ति में जुटना सम्भव बने; उसका रोजी-रोटी कमाने का अधिकार सिद्ध हो; परिणामस्वरूप अन्न-वस्त्र-आवास जैसी प्राथमिक आवश्यकता-पूर्ति से कोई वञ्चित न रहे। यह दिशा पकड़नी होगी, और इसके लिये अग्रिमतायें तय करनी होंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वराज की और स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा शासन में लोक की भागीदारी की जो रीति निपजे—उसमें कहीं पिछड़े वर्गों, महिलाओं और कोमल बालकों के शोषण की परछाईं भी न पड़े—इसकी खास सावधानी रखनी चाहिये। आज मुट्ठीभर लोगों के स्थापित हितों के लाभ में करोड़ों गरीबों-असहायों का शोषण हो रहा है, इसे रोकना ही होगा। इसके लिये जिन वर्गों को कीमत चुकानी पड़े—जीवन शैली की, सत्ता की, धन की, वैभव-विलास की, या रूढ़िगत आचारों के विसर्जन की—वह कीमत अब चुकानी ही चाहिये।

आचार्य राममूर्तिजी ने अपने अन्तिम प्रवचन में गांधीजी की ट्रस्टीशिप् की कल्पना को याद किया था। वह कोई असम्भव आदर्श या 'युटोपिया' नहीं है। उन्होंने कहा था कि बिहार में ४००० गाँवों ने लिखित दस्तावेज बना कर ट्रस्टीशिप् का सिद्धान्त अपनाया है। यह एक शुभ प्रारम्भ है। इसे समझ कर साथीपन की भावना फैलानी चाहिये। पू० विमलाजी ने अपने उपसंहारात्मक प्रवचन में इस भावना को पुष्टि दी थी। लोकजागृति और लोकपुरुषार्थ—ये ही इस भावना की सिद्धि के मूल स्तम्भ हैं, जो लोकसंस्थाओं द्वारा सुदृढ़ बनाये जा सकते हैं।

□

- आत्मपरिचय पूरा होने के बाद ही फिर आप जिसे 'समाज', 'देश', 'राष्ट्र' कहते हैं उनकी समस्यायें देखने और छूने के हम अधिकारी बन सकेंगे।
- चौबीस घंटे जिनके चित्त पर तनाव है, दबावों का आक्रमण है, वे अपने जीवन की यथार्थता को तो देख नहीं पाते, अपनी समस्या सुलझा नहीं पाते, तो समाज की-देश की-विश्व की समस्याओं को कैसे सुलझा पायेंगे? उपाय क्या ढूंढेंगे?
- आज कोई भी समस्या केवल आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक नहीं, और किसी एक देश या समाज की नहीं। सब समस्यायें विश्वव्यापक हैं, क्योंकि उनकी जड़ें व्यक्तिचेतना में धँसे संघर्ष में हैं।
- समाधान के उपायों की कमी नहीं, कमी है स्वस्थ मानवों की जो उन्हें अमल में लाये, जिनमें गम्भीरता, सन्तुलन, स्वास्थ्य धारण करने की शक्ति हो।

[सङ्कलित विमलवाणी]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म द्वारा बलसञ्चार

—विमला

अनेकों संस्कृतियों से सजा हुआ यह विश्व हमें जीने के लिये मिला है। भारतीय संस्कृति ने मनुष्य जीवन को लक्ष्य दिया है—"तस्माद् योगी भव अर्जुन !" मनुष्य देह में आकर योगावस्था को सिद्ध करना यह जीवन का लक्ष्य है। इस योगावस्था को सिद्ध न होने देने वाले अन्तराय हैं—

'अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः' मुनि पतञ्जलि ने योगसूत्रों में बताया है कि मनुष्य-जीवन को पाँच क्लेश घेरते रहते हैं, और इन क्लेशों से निवृत्ति योगावस्था का रहस्य है। 'क्लेशकर्मनिवृत्तिः कैवल्यम्' क्लेशों से निवृत्ति और कर्म से—यानी कर्ताभाव से निवृत्ति—आमूलाग्र निवृत्ति या आत्यन्तिक निर्मूलन कैवल्यावस्था है।

ये जो पंचविध क्लेश हैं उनमें मूल क्लेश अविद्या है। इसे जगदादि-कन्द कहा है। यह जगत् रूप भासमान होता है, इसकी अनेकरूपता अनेकता सत्य प्रतीत होती है—यह मूल अविद्या है। उसकी निवृत्ति होगी विद्या से—"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" प्रभु का स्वरूप कहा गया। उपनिषद् में भी अविद्या और विद्या शब्द आये तब आत्मज्ञान को ही विद्या कहा गया, और शब्दों द्वारा अर्जित किये जाने वाले पदार्थज्ञान को अविद्या कहा गया।

आज इस प्रभात में उन पंचविध क्लेशों के विवरण व गहराई में जाने का अवकाश नहीं, इतना ही समझ लें कि अपने आत्मस्वरूप का अज्ञान अविद्या है; उसके कारण 'मैं देह हूँ'—यह जो एक अध्यास खड़ा होता है, वह देहाध्यास एक प्रकार की सङ्कीर्ण अस्मिता जगाता है, मैं स्त्री हूँ—पुरुष हूँ—रूपवान् हूँ—कुरूप हूँ—धनवान् हूँ—दरिद्र हूँ—भारतीय हूँ—अंग्रेज हूँ—हिन्दू हूँ—मुसलमान हूँ—इत्यादि अनेक प्रकार की सङ्कीर्ण अस्मिताओं के स्तर अपनी चेतना पर जग जाते हैं, और उस सङ्कीर्ण अस्मिता में आकर मनुष्य व्यवहार करता है। यह सम्भव नहीं है कि देहाध्यास कायम रहे और राग-द्वेष की निवृत्ति हो। मनुष्य के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन में से हिंसा की निवृत्ति सम्भव नहीं है जब तक राग और द्वेष पैदा होते रहते हैं, पलते रहते हैं। अविद्या और अस्मिता के कारण अपने जो सम्बन्ध हैं सुबह से रात तक के—पदार्थों के साथ, व्यक्तियों के साथ, आस पास के प्राणियों के साथ—उनमें से राग और द्वेष का ज्वर पैदा होता है। और मनुष्य को कहा गया—"युद्ध्यस्व विगत-ज्वरः"—संसार के सम्बन्धों में कुरुक्षेत्र-धर्मक्षेत्र में जो हमें जीना है उसमें—विगतज्वर हो कर राग द्वेष अभिनिवेश आवेग के ताप पैदा किये बिना हमें जीना है। राग और द्वेष को ज्वर कहा गया।

आप जानते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदों का दोहन है, यह वेदों का सार है। अविद्या-अस्मिता के कारण राग और द्वेष पैदा होते हैं। राग पैदा होता है—जिससे मनुष्य को सुख लगता है, उसमें मनुष्य का चित्त चिपक जाता है। सन्त सिखाते हैं—चिपको नहीं। प्रार्थना में आप सन्तों की वाणी का सेतु बना कर परमात्मा के पास पहुँचना चाहते हैं। प्रार्थना में आप ईशावास्योपनिषद् गाते हैं। ऐसा लगता है कि इस छोटे से उपनिषद् में १०८ उपनिषदों का सार समाया हुआ है। इसमें भी कहा—"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः" (जितना स्वयं तुम्हें मिले उतना आनन्द से भोग लो—और अधिक के लिये लालच न करो!

जहाँ अनुकूलता लगती है—सुख की प्रतीति होती है, वहाँ चित्त चिपक जाता है—यही राग है। अपने चित्त को समझायें कि सुख एक प्रकार का क्लेश है, दुःख ही केवल क्लेश नहीं। यदि शोक क्लेश है तो हर्ष भी क्लेश ही है। जो-जो द्वन्द्वात्मक प्रतीति आती है वह सब क्लेश है। नित्य बदलने वाले पदार्थ, उनके नित्य बदलनेवाले गुणधर्म—उनमें भला चित्त क्यों चिपकने दें। जो हमेशा बदलता रहता है उसको पकड़ने की कोशिश करें, उसके पीछे रागी—अनुरागी बनकर दौड़ते रहें तो फिर हाथ में दुःख आने ही वाला है, क्योंकि जो बदलता है, जिसमें ठहराव है ही नहीं, बदलाव ही बदलाव है, उसको पकड़ने भागना तो अपनी छाया को पकड़ने जैसा है। वह पकड़ में नहीं आता। स्वामी अखण्डानन्द जी से एक बार किसी सत्सङ्गी ने पूछा—"महाराज संसार क्या है? परमात्मा क्या है?" वे बोले—"जिसको पकड़ने के लिये लोग दौड़ते हैं पर जो कभी पकड़ में नहीं आता वह संसार है। और जिसको छोड़ना चाहें—छोड़ने की कितनी ही कोशिश करें पर जो छूटता नहीं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसकी पकड़ से हम छूट नहीं पाते—वह परमात्मा है।"* तो जिन पदार्थों के रूप-गुण-धर्म नित्य बदलते रहते हैं जो आज हैं वह कल नहीं—ऐसे अश्वत्थ (कल तक न रहने वाले) के पीछे चित्त दौड़े उसे पकड़ने के लिये, अरे इस देह को पकड़े रखने के लिये चित्त दौड़े—

---

* [किन्तु, परमात्मा की भी किसी एक अभिव्यक्ति के प्रति 'राग' हो जाय तो वह जिन्दगी भर रुलाता-तड़पाता ही है; फिर 'तत्त्वाराधना' या सत्यशोधन नहीं हो पाता—

"ऊधो ! मन न भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधे ईस ?"

हाँ, वैसा पूरी तरह 'मन चला गया' हो जाय, तो भी कल्याण ही है। क्योंकि मन के झूले पर से उतर जाना और नित्य एक के बोध में स्थिर हो जाना ही तो योग है। किन्तु यदि उस 'एक' में सम्पूर्ण विश्व के 'मूल एक' को न पकड़ा गया तो—जिन्दगी आहों में कटेगी आँसुओं में भोगतीं रहेगी,—सन्तुलन खो जायेगा, तब कर्म-कुशलता कहाँ ? चित्त की समता कहाँ ?

इस तरह 'योग' का साधन हो सकने वाला अनुराग दुस्साध्य 'रोग' भी बन सकता है— "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"—(गी०)
हाँ, वह क्या बनेगा यह बहुधा अपने वश में नहीं होता—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्" ।—(कठोप०)

आज के वैज्ञानिक भी "quantum jump" के लिये कारण "Self will" के सिवा कुछ नहीं कह सके। जिसके भीतर वह "वरण" प्रकट होता है वह कह पाता है—

"राजी हैं हम उसी में जिस में तेरी रज़ा है।
यहाँ यूँ भी वाह-वाह है, और यूँ भी वाह-वाह है।"

—स्वामी रामतीर्थ

पर कभी-कभी यह भी उद्गार निकलते हैं—

"जो मैं पहिले जानती प्रीति किये दुःख होय !
जगत ढिंढोरा पीटती प्रीति न करियो कोय !" —मीरा

जब कि वह कहने वाले भलीभाँति जानते हैं कि—

"महब्बत करने की है बात नहीं, हो जाती जिसे वही जाने !"

और उन आँसुओं में हँसते आत्मानन्द को भी वे ही पहचानते हैं।]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो कल शिशु था फिर कुमार बालक बना, कल किशोर होगा—युवा होगा, फिर प्रौढ़ और वृद्ध होगा, फिर एक दिन जिसे चिता पर चढ़ाया जायेगा—उसमें मनुष्य का चित्त चिपक जाय, उसकी ही सुरक्षा, उसकी सुविधा में चित्त अटक जाय, फँसा रहे तो क्लेश ही तो है? उस क्षणभंगुर देह के लिये पदार्थों का संग्रह-परिग्रह करना, फिर उस परिग्रह को सम्भालना—ऐसे आधी-आधी मिलकर पूरी ज़िन्दगी निकल जाती है। इस तरह सुख भी क्लेश है।

जिससे सुख नहीं हुआ, प्रतिकूलता प्रतीत हुई उसके प्रति द्वेष की (उससे दूर हटे रहने की, बचने की, या आगे बढ़ कर घृणा की) भावना होती है। पदार्थ के प्रति भी, मनुष्यों के प्रति भी—अनुकूलता-प्रतिकूलता चित्त में पैदा होती है, उसमें से राग-द्वेष, एक के पीछे भागना और एक को छोड़ना दूर हटाना—यह सारा पसारा जंजाल संसार का खड़ा होता है।

इसी में आगे बढ़ कर आता है अभिनिवेश। "मैं करता हूँ, मैं यह करूँगा, यह भोगूँगा"—ऐसे कर्ता-भोक्ता भाव से चित्त में अभिनिवेश पैदा होता है। यह क्लेशों की जड़ है। सम्बन्धों में रहना है लेकिन क्लेशमुक्त चित्त को लेकर रहना है, सम्बन्धों में रहते हुए, अनुकूलता-प्रतिकूलता में से गुज़रते हुए उन्हें प्रियता-अप्रियता और राग-द्वेष नहीं बनने देना है। यही पुरुषार्थ मनुष्य का कर्तव्य है।

आप सुबह उठ कर प्रार्थना करते हैं—"प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुर-दात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्…"

हृदय में नित्य स्फुरित होते रहने वाले आत्मतत्त्व का मैं स्मरण करता हूँ। जो सत् चित् आनन्दस्वरूप है, मैं देह नहीं हूं, वह ब्रह्मतत्त्व हूँ जो बाहर भी है जो भीतर भी है।"

इसलिये प्रार्थना को हम देहाध्यास से छूटने की एक गुरुचाबी (Masterkey) समझ लें। प्रार्थना में सन्तों की वाणी का सेतु बाँधकर इस व्यक्त और अव्यक्त के उस पार हम चले जाते हैं। जहाँ अनन्त है। 'इस पार—उस पार' आदि शब्द बड़े अधूरे पड़ते हैं। अनन्त आत्म-तत्त्व का वर्णन करने में शब्द लूले-लंगड़े रह जाते हैं· जब व्यक्त-अव्यक्त को लांघकर अनन्त भगवत् सत्ता का स्मरण करेंगे—कि ब्रह्मपुर शरीर में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी अनन्त आत्मतत्त्व की सत्ता है और ब्रह्माण्ड में उसी की सत्ता ओत-प्रोत है—यह स्मरण रहेगा तब हमारा जीवन प्रार्थना बन जायेगा।

मानवीय सम्बन्धों में रहते हुए सभी प्राप्त कर्म करते हुए, पंचविध क्लेशों की निवृत्ति हो जाय तब योगावस्था सिद्ध हुई समझें। जैसे मातायें रसोई बनाती हैं तब गेहूँ चावल दाल आदि वस्तुओं में जो रस पड़ा है उसे सिद्ध करती हैं—प्रकट करवाती हैं, स्वाद लिया जा सके इस प्रकार से उन खाद्य-पदार्थों के भीतर अव्यक्त पड़े रस को प्रकट अभिव्यक्त बनाती हैं, वैसे इस हाड़-मांस के शरीर में ब्रह्मसत्ता का जो रस पड़ा है (रसानां वै स रसः) उस रस को सिद्ध करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। देह-इन्द्रियाँ-मन-प्राण-आकाश आदि सबकी मदद से उस रस को सिद्ध करना है ताकि 'रसेश्वर' की सेवा हमारे द्वारा हो सके।

महाराष्ट्र के योगेश्वर सन्त ज्ञानेश्वर (१२वीं सदी) ने श्रीमद्भगवद्-गीता की टीका (भावार्थ-दीपिका या 'ज्ञानेश्वरी') में मंगलाचरण में नमन किया है—

ॐ नमोजी आद्य। वेद-प्रतिपाद्य।
जय-जय स्वसंवेद्य। आत्मरूप !!

उसे नमन करते हैं जो 'आद्य' है, जो सारी कार्य-कारण परम्परा से परे है जो स्वयं ही कारण है और कार्य रूप में परिणति रूप में भी स्वयं ही विराजमान है। जिसके प्रतिपादन का यत्न वेदों ने किया, पर 'न इति न इति' कहकर रुकना पड़ा—

"यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वाग् अभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, न इदं यदिदमुपासते॥"

उपासना की प्रक्रिया में प्रभु को बाँधा नहीं जा सकता, वे किसी कारागार में रुँधते-बँधते नहीं। वाणी द्वारा उनका अभ्युदय (या कहा जाना) नहीं होता, वाणी का अभ्युदय उनके कारण होता है।

'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्'
'यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्'

लेकिन उसका स्मरण करना है ताकि उसके साथ अनुसन्धान बना रहे जो वेद-प्रतिपाद्य है। वेदों ने उसके प्रतिपादन का थोड़ा प्रयत्न किया।

प्रार्थना भारतीय जीवन शैली-पद्धति का एक मधुर अङ्ग है। परम-तत्त्व का ज्ञान, कम से कम शब्दज्ञान अन्य संस्कृतियों में भी होगा—लेकिन अपनी संस्कृति में जैसे योगी बनने का लक्ष्य मनुष्य को दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया—यह उसकी विशिष्टता है; वैसे ही भक्ति नाम का जो एक बिज्ञान, कला या योग हमें मिला यह उसकी दूसरी विशिष्टता है। जो जाना गया—शब्दों से जाना कि परमात्मा ज़रूर हैं, वे सब कुछ में ओत-प्रोत हैं। इस देह में वही जी रहा है—इतना जानने भर से सन्तुप्ति नहीं है, सन्तुप्ति के लिये जो जाना गया उसके साथ सम्बन्ध बाँधना पड़ता है, जो सर्व में ओत-प्रोत है, सर्वाकार है। जब जाना हुआ जिया जाता है तब उस जीवन की गति में सन्तुप्ति का स्रोत है, ज्ञान में नहीं। जानने भर से बुद्धि में एक प्रकार का ठहराव आ जाता है। सर्वदेशी है, निर्गुण-निराकार है उसके साथ भला कैसे सम्बन्ध बाँधे? वह किसी एक देह में तो पूरा-पूरा है नहीं कि चलें देह की मार्फत इन्द्रियों द्वारा उससे सम्बन्ध बाँध लें। यह तो सम्भव नहीं। तो युक्ति निकाली अपने पूर्वजों ने कि उससे सम्बन्ध होगा—भावसम्बन्ध। उसके साथ आप भाव की प्रतिष्ठा कीजिये, अपनी प्रत्यक्ष काया के भीतर एक भावकाया निर्माण कर लीजिये, माता-पिता ने आपको जन्म दिया, आप अपनी भावकाया को जन्म दीजिये। बौद्ध धर्म में एक अलग प्रकार से अलग दृष्टिकोण से उसे धर्मकाया के रूप में देखा गया है।

'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई!'

कौन से गोपाल थे मीरा के सामने? इस राजस्थान के महाराणा के महल में उत्पन्न हुई और पली वह परम योगिनी! उसने भावसम्बन्ध बाँधा। छोटी सी गिरिधर की मूर्ति में उसने ब्रह्माण्डव्यापी को देखा। भक्ति कैसी शक्ति देती है!

अभी दिसम्बर महीने में बड़ोदा जिले में आणन्द के निसर्गोपचार केन्द्र में १०–१२ दिन रहना हुआ। वहाँ वल्लभविद्यानगर के प्राध्यापक आते थे, रोज़ की गोष्ठियाँ चलती थीं। एक दिन एक प्राध्यापक ने कहा कि T. V. पर जो रामायण महाभारत दिखाया जाता है—इसने तो गजब कर दिया हमारी माताजी धूप दीप जला कर वहाँ राम-सीता कृष्ण-अर्जुन आदि को देखती है, भावविभोर होती है। वह समझती ही नहीं कि ये अभिनेता है। मैंने कहा—"अरे पगले भाई! माँ नहीं समझती हैं कि तुम नहीं समझते हो? तुम्हारे पास भाव-सम्बन्ध बाँटने की शक्ति नहीं है इसलिए तुम वहाँ अभिनेताओं को देखते हो; माँ तो वहाँ राम और कृष्ण को देखती हैं। जो रामायण-भागवत में उन्होंने राम को पढ़ा, जो शब्दमय काया थी उसे चित्रमय देखने की शक्ति माँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की आँख में है। तुम कहते हो ये राम तो नहीं ये अरुण गोविल या नीतीश है। तुम्हारे तर्क ने तुम्हारी देखने की शक्ति को पंगु बना दिया। उसमें भाव पैदा नहीं हो पाता।" मेरा कहने का तात्पर्य यही है कि निरक्षर व्यक्ति के चित्त में भी एक भाव सम्बन्ध बाँधने की शक्ति भक्ति-योग ने जगा दी। उसमें विकृतियाँ आयीं—यह तो पुरोहित वर्ग का, धर्मगुरुओं का दोष है, वे समझा न पाये समाज को उचित सम्यक् रीति से, इसलिए विकृतियाँ घुस गयीं। लेकिन उन विकृतियों के कारण भक्ति विकृत नहीं है।

यह भावसम्बन्ध बाँधा जा सकता है कि "हे प्रभु आप मेरे हैं मैं आप का हूँ। आपके प्रति समर्पित हूँ। जो कुछ कराते हैं वह आप कराते हैं। सुख आया आप की प्रसादी, दुःख आया आप की प्रसादी। जन्म हुआ आप की प्रसादी, मृत्यु भी आप की प्रसादी"।—यह भक्त की भाषा है। और "वह सत्ता सब कुछ कराती है"—यह ज्ञानी की भाषा हुयी। ज्ञानी में थोड़ा रूखापन आ सकता है—"वेदाभ्यासजड़मतिः व्यावृत्त-कौतूहलः" वह हो सकता है। भक्त का हृदय हरा-भरा रहता है कि "मैं प्रभु का हूँ।" उस तत्त्व को उसने सजा लिया। चाहे जिस रूप में सजा लिया अपनी उपासना के लिये—वह विषय गौण है। लेकिन इस भारत में तत्त्वज्ञान और तत्त्वबोध के साथ-साथ, तत्त्व के प्रति भावसंबंध बाँधने की एक कला, एक विज्ञान विकसित हुआ। भाव भक्ति का प्राण है, भक्ति केवल क्रियाकाण्ड नहीं है। जो क्रियाकाण्ड में गये वे यान्त्रिक रह गये, और जिन्होंने भाव का सम्बन्ध बाँधा वे विनोबा जैसे ज्ञानी भी तुलसी की चौपाइयाँ गाते-गाते नाचते थे। बहुत पहले की बात है—पवनार आश्रम में बाबा प्रार्थना खड़े-खड़े कराते थे, सब को वर्तुलाकार खड़े कराते; भजन और चौपाइयाँ गाते हुए नाचते। रामनाम या कृष्ण नाम लेते ही उनकी मुद्रा बदल जाती। विनोबा जी की ज्ञान-मुद्रा तब भावमुद्रा बन जाती—यह स्वयं हमने देखा है। उस भाव को जीते हुए उन्हें देखा है।

अतः मित्रो, एक तो चित्त से पंचविध क्लेशों की निवृत्ति हो, दूसरी तरफ तत्त्वज्ञान के सहारे शाब्दबोध के सहारे चित्त में भाव-निर्माण हो। पल भर के लिये भी उस तत्त्व के अनुसन्धान से चित्त अलग न हो जाय—"जो पल भर भी नहीं विभक्त वही कहलाता भक्त।" इस प्रकार की भक्ति की शक्ति प्राप्त करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केवल ज्ञान में शक्ति नहीं। ज्ञान भी होना ही चाहिये, लेकिन जब तक ज्ञान की परिणति भक्ति में नहीं होती, उसमें से भावसम्बन्ध और प्रेम की परमता जब तक फूट नहीं निकलती; भाव भक्ति के पुष्पों में से प्रेम का सौरभ आसमन्त को सुरभित नहीं करता, तब तक जीवन धन्य नहीं बनता है। इसलिये, मुझे तो आप के पास बात रखनी थी कि जीवन का लक्ष्य योग है और जीवन जीने के लिये आधार भक्ति देती है। सम्बन्धों में आने वाले खट्टे-मीठे अनुभवों में चित्त की समता कायम रखने के लिये एक आधार जो चाहिये वह आधार भक्ति देती है।

इन दोनों का सहारा लेने के लिये यह प्रार्थना का संस्कार है। इसलिये नहीं कि "मुझे बेटा दे दो, मुझे धन-सम्पत्ति दे दो, मुझे सत्ता दे दो, मेरा 'प्रमोशन' कर दो।".....यह प्रार्थना की विकृति है। यदि कुछ माँगने लायक अर्थ है जीवन में तो वह परमात्मा ही परम अर्थ है। परमात्मा से परमात्मा को ही माँगा जाता है। बाकी कुछ उनके पास माँगना—यह अनर्थ है यह प्रार्थना कतई नहीं। उनके पास उन्हीं को माँगा जाय, उन्हीं को ग्रहण-धारण कर के उन्हीं के सहारे जिया जाय।

यह मीरा की भूमि है, इसलिये चित्त में आया कि प्रेमयोगिनी मीरा की भक्ति की मस्ती के पीछे, उनके भजनों के एक-एक शब्द में जो वेदना प्रकट होती है, जो भाव का ऐश्वर्य प्रकट होता है, जो प्रेम की सम्पदा प्रकट होती है—उसके बारे में कुछ कहूँ।

सुबह उठें, शरीर की शुद्धि करें, स्थान स्वच्छ-शुद्ध करें, फिर मन की, बुद्धि की, भाव की शुद्धि के लिए प्रार्थना में बैठें।

सन्तों की वाणी सेतु है जो हमें अनेकता के सागर में से एकता के तट पर ले जाते हैं, जो हमें सुख-दुःख के द्वन्द्व के सागर के परे ले जाते हैं, उस निर्द्वन्द्व सत्ता में। अतः सन्तों की वाणी के सेतु द्वारा उस सत्ता से सम्बन्ध बाँधें सुबह उठने पर, और रात को सोने से पहले। तो दिन भर का जितना क्लेश होगा—शरीर को कष्ट और चित्त को क्लेश—दोनों को धो डालें। चित्तप्रक्षालनार्थं प्रार्थना।

इसका महत्त्व समझें। यह नहीं कि यह भी एक कसरत, बन जाय, यान्त्रिक पुनरावर्तित क्रिया (mechenical repetative activity) बन जाय। वह तो समय का निरर्थक अपव्यय होगा। वह न करके प्रार्थना में से दिन भर के लिये स्फूर्ति, शक्ति इकट्ठी करें। फिर दिन भर जीने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के बाद सारी थकान या सारी कमाई उसी परमसत्ता को गोद में डाल कर निश्चिन्त हो कर माँ की गोद में शिशु की भाँति सो जाँय।

विनोबा जी कहते थे रात का सोना तो प्रतिदिन मृत्यु का रिहर्सल है। कह देना कि "प्रभु आज जितनी शक्ति मिली थी वह उँडेल कर काम किया, अब सो रहा हूँ फिर कुछ काम लेना हो तो सुबह जगा देना। यदि इस शरीर का काम पूरा हो गया हो तो उठा लेना!"

ऐसी मस्ती में लेटते ही पल भर में प्रगाढ़ निद्रा—निःस्वप्न निर्दोष निद्रा में चले जाना—यह कोई कैवल्य-सुख से कम नहीं है। उसमें एक आनन्द है, वहाँ कायाकल्प होता रहता है। इसलिये रात में भी प्रभु की गोद में अपने आप को रखने के लिये सब प्रकार से अपना प्रक्षालन कर लेना। ऐसी प्रार्थना सार्थक है, सजीव है। अन्यथा इस वैज्ञानिक युग में यान्त्रिक क्रियामात्र प्रार्थना की कसरत के लिये कोई स्थान नहीं।

जो समझपूर्वक किया जाय, जिसमें कुछ न कुछ परिणाम आपको देखने को मिले, वही सार्थक कर्म है। वह अध्यात्म कैसा? जिसका परिणाम न देह में देखने को मिले, न मन में दिखाई दे, न सम्बन्धों में उसका प्रतिबिम्ब पड़े। अध्यात्म तो गणित जैसा शास्त्र है। अध्यात्म जीवन का विज्ञान है, यह भावनाओं की आतिशबाजी नहीं, यह कल्पना का विलास नहीं, यह वाणी का विहार नहीं, यह तो विज्ञान है भाई। भारतीय-वैदिक संस्कृति तो सर्वथा वैज्ञानिक संस्कृति है।

इस बात को भूल गये हैं हम, इसलिये यहाँ लाखों मन्दिर-मठ आदि हैं, रामायण-भागवत-गीता जैसे महान् जीवनशास्त्रों के कथा-पारायण चलते हैं; फिर भी इस देश की जनता तेज-ओज-रस-कस से विहीन है, भ्रष्टाचार और प्रमाद से शापित है। "प्रमादो वै मृत्युः"—यह धीरे-धीरे रोज-रोज आत्महत्या करने वालों की जमानत है। इस आत्महनन में से इस देश को यदि बाहर निकालना है तो जनसामान्य के लिये प्रार्थना है; जो विशेष विचार कर सकते हैं, जिनकी बुद्धि परिष्कृत है उनके लिये ज्ञान का मार्ग है; भोले-भावुक लोगों के लिये भक्ति का मार्ग है। पकड़ा दीजिये जो मार्ग अनुकूल हो। पर साथ ही कहिये उन्हें कि—"हे अमृतसन्तान उठ खड़े हो जाओ!

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत!

अपने-अपने जो कर्तव्य हैं, उनका पालन करो! और एकही धर्म है आपका—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तस्माद् योगी भव अर्जुन !"
"युध्यस्व विगतज्वरः"
"मामनुस्मर ! युध्य च !"

"मेरा अनुसन्धान-स्मरण-बनाये रखते हुए, चित्त को राग-द्वेषादि क्लेशों के ज्वर से मुक्त स्वस्थ रखते हुए हे अर्जुन ! द्वन्द्वों भरे इस कुरु-क्षेत्र-धर्मक्षेत्र में तुझे लड़ना है—योगी की अवस्था में रहते हुए।

"समत्वं योग उच्यते"

चित्त का समत्व न ढले यह कसौटी है। सम्बन्धों को बन्धनापादक न बनने दें, मुक्तिदायक बनायें—यही तेरा पुरुषार्थ है।

ऐसी पुरुषार्थभरी एवं जीवन-रस का रसिकता से सेवन करने की प्रेरक वाणी हमें विरासत में मिली है। उसे भूलने का दुष्परिणाम सामने है। जहाँ कहीं ऐसे युवा-शिबिर हों वहाँ नई पीढ़ी को मानव चेतना को हिला कर खड़ा करना है, अपनी विरासत को समझने की दृष्टि उसमें खोल देनी है। वह योगावस्था में आरूढ़ होकर, भक्ति का ऐश्वर्य लेकर ज्ञान की सम्पदा लेकर जीवन में कदम बढ़ायें।

आज के इस दीन-हीन रूखे-सूखे हताश-लाचार भारत में यदि फिर से बल-संचार करना है तो वह—धन से, अर्थनीति से, राजनीति से, उतना नहीं होगा जितना अध्यात्म से होगा, आत्मबल जगाने से होगा। यह आत्मबल जगाने का तप करना है। तप से बल मिलता है।

मेरे लिये ऐसा कोई कर्म इस जीवन में नहीं हो सकता जो वैदिक उपदेश से अछूता हो। वेदों का सार जीने के लिये मनुष्य को भारत में जन्म मिला है। वह सार जिया जाता है प्रातःकाल शय्या से उठने से लेकर पुनः शय्या में लेट कर सोने तक के प्रत्येक क्षण में। अपने यहाँ तो शौचादि को भी प्रातर्विधि और स्नानादि को संस्कार कहा गया है। जो प्राकृत है उसको शुद्ध करने के लिए जो किया जाता है सम्यक् ज्ञान से सम्यक् रीति से, वह संस्कार है। शुभसंस्कारों से सिञ्चन करते रहना देह का, मन का, प्राणों का, इन्द्रियों का—यही तो अपना काम है। यही खेती है अपनी। इसी देह में यह खेती करनी है। इस प्रकार धर्म-क्षेत्र-कुरुक्षेत्र में युद्ध भी करना है, योगावस्था भी सिद्ध करनी है और भक्ति का ऐश्वर्य भी लूटना है। ऐसी प्रेरणा आप सबको मिले।

[नथमीत चिकित्सा केन्द्र–बस्सी चक (जि० जयपुर में) युवा-शिविर के अन्तर्गत ६।४।९० को प्रातः हुआ प्रार्थना-प्रवचन]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्सङ्ग-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—साधक बनने के लिये क्या करना चाहिए, उसके लिए प्रारम्भ कैसे करें ?

विमलाजी—पहले तो संसारी और साधक के बीच क्या फर्क है—यह समझना होगा।

यह जो दृश्य एवं व्यक्त (Visible & tangible) जगत् है; जिसे आँखों से देखा व सभी इन्द्रियों से स्पर्श किया जा सकता है—यही सत्य है—यह मानने व समझने वाला मनुष्य संसारी है। क्योंकि उसको इस जगत् से इन्द्रियों के लिए, मन और बुद्धि के लिए, सुख प्राप्त करने की इच्छा होती है। दृश्य जगत् पर सत्ता प्राप्त करने की, आधिपत्य जमाने की बात उसके दिल में आती है। इस व्यक्त के पीछे कोई अव्यक्त सृष्टि है, उसमें भी शक्तियाँ हैं, उनके साथ भी हमारा कोई सम्बन्ध है, उनके भी हम अङ्ग हैं—यह उनके ध्यान में नहीं आता।

योरोप-अमेरिका में जो भौतिक-उपभोगवाद का दर्शन बना, जिस भौतिकवाद (Materialism) को समाजवाद एवं साम्यवाद ने एक दर्शन (Philosophy) का रूप दे दिया, वह इसी पर आधारित है कि जो दृश्य है; व्यक्त है, वही सम्पूर्ण सत्य है, वह सत्य का एक अंग या अंश मात्र नहीं; बस वही उतना ही सत्य है। इस दर्शन को मानने वाला मनुष्य संसारी कहलायेगा। अपने यहाँ भी एक धारा इस दृष्टि की रही है—चार्वाक् दर्शन। जो प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। उनका कहना है कि—

"यावज्जीवेत् सुखंजीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ?"

जब तक जीना है, मजे से जीयो; किसी भी तरह सुखसाधन जुटा लो, चाहे ऋण करके ही, पर घी पियो ! (हाँ मौज मनाने के लिये भी घी पीने की बात कही जो आयु व शक्ति बढ़ाता है, शराब पीने को नहीं कहा ! क्योंकि वह व्यक्ति के लिये मृत्यु रूप है और समाज के लिये विनाशकारी) यह शरीर जब जल जायेगा तो कौन वापस आने वाला है ? ऋण चुकाने की चिन्ता क्यों करें ?"....ऐसे भौतिकवाद में से एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उच्छृङ्खल भोगवाद (The cult of Sensual pleasure) का जन्म होता है।

उसी में डूबे और मस्त रहने वाले संसारी के कान में कभी सन्तों की वाणी पड़ती है। कभी घर में कुछ संस्कार मिले हों; कोई धर्मग्रन्थ सन्तों के ग्रन्थ देखने में आये हों, तो कभी न कभी सवाल खड़ा होता है कि यह जो दृश्य पदार्थों का जगत् है, इसमें—इन पदार्थों में ऊर्जा कहाँ से आयी ? इन सूर्यकिरणों में केवल प्रकाश ही नहीं, बल्कि जीवन देने की, ऊष्मा देने की, शुचिता देने की शक्ति कहाँ से आयी ? चन्द्रमा की चाँदनी में 'सुधा' (संजीवनी एवं ओषधि शक्ति) कहाँ से आयी ? पूर्णिमा के समय धरती में बीज बोयें तो उन पौधों के फलों का रस-कस कृष्ण पक्ष या अमावस में बोये बीजों की अपेक्षा ज्यादा क्यों होता है ? [स्टाइज़र नाम के एक बड़े मनीषी हुए हैं १९२० में। जिनकी पूरी Anthroposophy इस दर्शन पर खड़ी है कि पूर्णिमा की रात में चन्द्रमा में से जो ज्योत्स्ना झरती है, उसका फलों-सब्जियों व खेतों के साथ क्या सम्बन्ध है ? उस दर्शन को मानने वाले किसान पूर्णिमा की रात को बीज बोते हैं।] चन्द्रमा में यह अमृतसिञ्चन की शक्ति कहाँ से आयी ?.... पहाड़ी धरती में से कहीं सोता फूट निकलता है—नन्हा झरना बहने लगता है; पहाड़ के पेट में से वह शक्ति कहाँ से आयी शीतलता की, प्यास बुझाने की ?.... धरती में यह ऊर्जा कहाँ से आयी कि नन्हा सा बीज बोने पर उसमें से असंख्य बीज बनते हैं, कण में से मन भर उपजाने कीं शक्ति मिट्टी में कहाँ से आयी ?

इस तरह, सन्तों की वाणी के कारण, कभी न कभी संसारी को भी व्यक्त में समायी अव्यक्त शक्ति का स्पर्श होने लगता है। तब वह संसारी में से जिज्ञासु बन जाता है, कि इस शक्ति का स्रोत कहाँ है ? हमारी आँखों में, हमारे शरीर में जो नूर है, वह कहाँ से आता है ? और मृत्यु होने पर वही शरीर निस्तेज होकर पड़ा रहता है, तब क्या उसे छोड़ जाता है ? वह तेज कहाँ जाता है ? यह सब जानने-खोजने की तड़पन होने लगती है। संसारी में से जिज्ञासु बन कर वह व्यक्ति फिर ग्रन्थ देखता है, सत्सङ्ग में जाता है, आश्रमों में जाता है, जो कोई अनुभवी सन्त मिलें उनसे पूछता है, जानना चाहता है। यह है "आत्मजिज्ञासा, ब्रह्मजिज्ञासा !" उससे रहा नहीं जाता। जिज्ञासा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके चित्त को बेचैन बनाती है।"... १८ वर्ष का युवक नरेन्द्रदत्त बेचैन था इसी जिज्ञासा के कारण। वह गया ब्राह्मसमाज-प्रार्थना समाज में; कभी केशवचन्द्र सेन के पास जाता, कभी देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास गया,—सब से पूछता फिरता—"आपने भगवान् को देखा है? कहते हैं भगवान् ने सृष्टि बनायी, वह कहाँ है भगवान्? आप मुझे दिखा सकते हैं?"

ऐसे जिज्ञासु बनने पर, कभी किसी सन्त की बात जँच जाती है या कोई ग्रन्थ पढ़ने पर कुछ समझ में बैठ जाता है, तब जिज्ञासु सोचता है कि मैं भी साधना करके देखूँ! जो तुलसी, मीरा, सूर, कबीर ने पाया, जो नरसी मेहता, धन्ना भगत ने पाया—देश भर में सभी क्षेत्रों में हुए सन्तों ने जो पाया, उनकी वाणी में जिसकी झंकार है—जो "निज में निजपद पाने" "कुण्डल में कस्तूरी की तरह घट में राम को पाने" "अखूट अलूट रामरतन धन पाने" की बात कहते हैं—वह 'राम' क्या है? 'निजपद' क्या है?—वह मुझे कैसे प्राप्त हो? तब वह जिज्ञासु में से साधक बनता है।

अब वह उस जिज्ञासा से उठी साधना की इच्छा के लिये समय खर्च करेगा। तन-मन-धन की शक्ति खर्च करेगा। वह समर्पित हो जायेगा साधना के मार्ग के लिये।

आप ने पूछा है कि साधना का प्रारम्भ कैसे करें? इसके लिये आप अपनी प्रकृति (स्वभाव) देख लीजिये कि आप बुद्धिप्रधान हैं या भावना-प्रधान। अपने देश में—"साध्यस्य एकता, साधनानाम् अनेकता" का वैभव है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि यहाँ साध्य एक है—आत्मा की, परमात्मा की, परमसत्ता की, सृष्टि के रचयिता की खोज। लेकिन साधना-मार्ग अनेकों कहे गये हैं। यहाँ तक कि सन्तों ने कहा—"जितने मत (सोचने के तरीक़े) हैं, उतने पथ हैं।"

- आप के शरीर में बहुत शक्ति है और उस शक्ति का उपयोग करने की वृत्ति है—रजोगुणप्रधान प्रकृति है तो आप हठयोग, तन्त्र व मन्त्रयोग की साधना करेंगे।

- आपका मन भावनाशील है, सुकोमल भावनाओं में—सौन्दर्यचिन्तन में, कला-साहित्य-संगीतादि में रस लेता है तो आपको भक्तिमार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुचिर लगेगा, सभी भावनायें चरम सीमा तक "प्रभु" के नाम-रूप-गुण-लीला के चिन्तन-मनन-कीर्तन में, भजनों में, पूजा-अर्चा-उत्सवादि में उँडेलने में आप को आनन्द आयेगा।

- आप बुद्धिप्रधान व्यक्ति हैं तो आप ज्ञानमार्ग से जायेंगे। सत्त्वगुण प्रधान प्रकृति है, सत्त्वगुण प्रकाशक, हल्का और निरामय (सर्वथा विकाररहित) होता है। अतः आप के लिये ध्यानमार्ग सुगम रहेगा।

अपने संस्कार, अपनी प्रकृति एवं रुचि पहचान कर उसके अनुसार अपने लिये मार्ग चुनना, निश्चय करना होता है। आप ही बैठ कर सोचें। यदि जैन-परिवार में जन्म हुआ है तो आप को मौन का मार्ग अनुकूल पड़ेगा, मौन में से ध्यानमार्ग में चले जायेंगे। वैष्णवकुल में जन्म है तो जप–नामसंकीर्तन–भजन–पूजा–अर्चन करते हुए वह ध्यानमार्ग में आयेगा। अपने संस्कारादि के अनुसार स्वयं ही अपना मार्ग निश्चित करना होता है।

जो मार्ग निश्चित किया हो, उसका वाङ्मय (कम से कम पिछले सौ वर्ष में हुए उस पथ के सन्तों की वाणी, चरित आदि) इकट्ठा करके अध्ययन कीजिये। रोज उठ कर स्नान करके नियमित रूप से स्वाध्याय शुरू कर दीजिये। यदि ज्ञानमार्ग से जाना चाहते हैं तो उपनिषद्, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि रमण, श्री अरविन्द आदि के ग्रन्थों का स्वाध्याय कीजिये, और जो बात समझ में आयी उसका आचरण करने लगिये। यदि मौनमार्ग की ओर रुझान है तो स्नानादि करके सुबह आधा घण्टा, रात को सोने से पहले आधा घण्टा (साधना के लिये पृथक् रखे हुए स्वच्छ श्वेत या हल्के रंग के वस्त्र पहन कर) नियमित समय पर पृथक् आसन पर एकान्त में बैठने लगिये। यथामति–यथारुचि–यथाशक्ति अपने चुने हुए साधना-मार्ग पर चलना नियमितरूप से आरम्भ कर दीजिये।

आप की जिज्ञासा प्रामाणिक हो, आप सचमुच साधक होना चाहते हों, तो आप की यथाशक्ति साधना नियमित व सतत आरम्भ होने पर थोड़े ही दिन में जीवनप्रभु आप को मार्गदर्शन कर सकने वाले व्यक्ति से मिला ही देंगे। मार्गदर्शक को खोजने नहीं जाना पड़ता। आप साधना आरम्भ कीजिये तो सही! आप एक कदम बढ़ाते हैं कि परमात्मा दस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कदम आगे बढ़ते आते हैं आप की सहायता के लिये। क्योंकि जिसने परमात्मा की ओर मुख कर लिया कि "मुझे उन्हें पाना है, वही लक्ष्य है मेरे जीवन का ! तो जो वैश्विक चेतना व ऊर्जा है, जो अखिल जीवन की सत्ता है वह आप के प्रति अभिमुख बन जाती है। गीता की भावार्थ-दीपिका में श्रीज्ञानेश्वर महाराज ने बारहवें अध्याय में वासुदेव मुख से कहा है—

"मुझे भक्तों का व्यसन ! भक्त मेरे निज ध्यान !
वे कान्ता में वल्लभ जाम ! अर्जुन तू !"

"अर्जुन ! मुझे तो भक्तों का ही व्यसन है; भक्त मुझे इतने प्रिय हैं कि मेरी दृष्टि उन्हीं को खोजती रहती है कि धरती पर कौन मेरा भक्त है ? कहाँ है ? नाना पदार्थमयी सृष्टि में पदार्थों की ओर से मुड़ कर कौन मुझे चाह रहा है ? अनेकता में छिपा जो एकता का धागा है उसे कोई ढूंढ़ रहा है ? जो कोई ऐसा दिखता है—मैं स्वयं उसी का ध्यान करने लगता हूँ। वे भक्त मुझे इतने प्रिय हैं जितनी कि किसी प्रेमी पति को अपनी कान्ता प्रिय होती है।"

इसलिये आप साधना प्रारम्भ करते हैं तो यह चिन्ता न रखिये कि "मैं तो अपनी समझ व बूझ के अनुसार साधना कर रहा हूँ, कहीं ठोकर खाऊँ-कहीं भूला पड़ूँ तो मेरी मदद कौन करेगा ?" जो वैश्विक ऊर्जा या चैतन्य है,—जो विश्वविभु प्रभु सर्वाधार-सर्वाकार बने हुए हैं, जो जगन्नाथ जगदाकार बने हैं, वे किसी न किसी रूप में मदद किये बिना नहीं रहेंगे।

प्रश्न—मनुष्य अवतार कैसे सफल बने ? ईश्वर को कैसे पाया जा सकता है ?

विमला जी—प्रश्नकर्ता ने 'अवतार' शब्द बड़ा सुन्दर लिया है। 'अवतरण' याने Descent of the Devine। चित्शक्ति, वैश्विक ऊर्जा—का अवतरण हुआ है मनुष्य देह में। स्वामी विवेकानन्द ने विश्वधर्म-परिषद् में खड़े होकर भाषण प्रारम्भ करते हुए सभा को सम्बोधन किया—"हे अमृतपुत्र ! (Yee the children of Immortality) मैं आप से कुछ कहने आया हूँ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने यहाँ जगत् केवल पञ्चमहाभूतों का सङ्घात (emulgamation) नहीं है; यह तो अमृतमयी सत्ता (जो एक थी) ही अनेक होकर उतर आयी है। एकता ने अनेकता का शृंगार धारण किया है। इस पार्थिव = पञ्चभौतिक आकृति में भी वही चैतन्य सत्ता है, जिसे ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म कहा गया है।

अतः 'मनुष्य' उस सच्चिदानन्दमयी चैतन्यसत्ता का ही 'अवतार' है। श्रीमद्राजचन्द्र ने कहा है—

"मैं कौन हूँ ? आया कहाँ से ? सच्चा स्वरूप क्या है मेरा ? किसके साथ सम्बन्ध है ? इन सम्बन्धों में जो आसक्तभाव निर्माण हुआ है, उसको रखना है या नहीं ?—इसका विचार यदि विवेकपूर्वक किया जायेगा तो आत्मस्वरूप उपलब्ध होगा।" ऐसे स्वरूप पहचानने और विश्वरूप पहचानने से मनुष्य अवतार सफल बनेगा। अपना और विश्व का क्या सम्बन्ध है इसे पहचान कर जीने से यह जन्म सफल होगा। केवल जानने से कुछ नहीं होता। जानते तो पण्डित लोग भी हैं। जो जाना एवं समझा जाता है उसे प्रत्यक्ष जीवन में जीना पड़ता है। जीने वाला कृतार्थ हो जाता है, और केवल जान लेने वाले के हाथ में, जीवन की सन्ध्या में केवल अर्थहीन शब्द रह जाते हैं, या तो शब्दों की भी राख ही रहती है।

अब प्रश्न का उत्तरार्ध लें, कि ईश्वर को कैसे पाया जा सकता है ? भाई, ईश्वर क्या आप से अलग कोई दूर की वस्तु है ? सृष्टि के बाहर कहीं है ? भौगोलिक दृष्टि से दूर है ? समय के अन्तर से दूर है ? दूरी क्या है ? कैसी है ? इसे समझो तो !

आप स्वयं को देखना चाहते हैं तो क्या करते हैं ? किसी दर्पण के सामने जाकर खड़े हो जाते हैं न ! या तो तालाब के किनारे बैठ कर तालाब के निस्तरङ्ग शान्त जल में अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं। इसी तरह अपने आपको देखेंगे तो उसमें जो ईश्वर की सत्ता है उसे देख पायेंगे। यहाँ देखना ही पा जाना होता है। अब हमारे अपने आप में समाई ईश्वरता को कैसे देखा जाय ? वह इन्द्रियों से नहीं देखा जा सकता, मन से नहीं, वाणी से नहीं;

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते····
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्····

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।

जो आँखों से देखा नहीं जाता, कानों से सुना नहीं जाता, वाणी से कहा नहीं जाता, मन से जिसका चिन्तन नहीं हो सकता; पर ये इन्द्रिय-मन-वाणी जिसके बल से अपना-अपना कार्य कर पाते हैं वह ब्रह्म है; यह जो कुछ इन्द्रिय-मनोगोचर पदार्थ है वह ब्रह्म का 'स्व'-रूप नहीं (क्योंकि केवल इतना ही ब्रह्म नहीं।) अपने आपको और अपने में जो ईश्वरता विद्यमान है उसे देखने के लिए करना यह पड़ेगा कि इन्द्रियों की जितनी गतियाँ हैं उन सब को शान्त होने दिया जाय। मन बुद्धि की वृत्तियों को भी समेट कर शान्त हो जाना पड़ेगा। यानी विचार करना, भावना करना, कुछ पाने या छोड़ने की इच्छा करना—इस सब को छोड़ कर शान्त हो जाना होगा। सब गतियों के शान्त होने पर, अपने स्वरूप में स्थित होने पर, अपने 'होनेपन' में ही ईश्वरसत्ता का दर्शन-स्पर्श होगा। वह बुद्धि से नहीं, केवल संवेदनशीलता से करना होता है।

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः
तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्

[स्वयम्भू परमात्मा ने इन्द्रियों को बाहर की ओर गति वाली बनाया है, इसलिये प्राणी बाहर ही देख पाते हैं भीतर अपने अन्तरात्मा को नहीं देखते। कोई 'धीर' अमृतत्व चाहने वाला व्यक्ति इन इन्द्रियों की गति पलटा कर भीतर ले आता है वही भीतर प्रत्यक् आत्मा को देख पाता है जो प्रति-(एक-एक सभी सृष्टि में व्यक्त है)।

इन्द्रियाणि पराण्याहुर् इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर् यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

स्थूल शरीर से परे हैं इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से परे है मन, मन से परे है बुद्धि, और जो बुद्धि से भी परे है जो बुद्धि से सूक्ष्म है, बुद्धि का भी कारण (बुद्धिशक्ति बनाने वाला) है उसे बुद्धि पकड़ नहीं पाती। (अपने कन्धे पर आप नहीं चढ़ा जाता!)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

येन सर्वमिदं विजानाति तं केन विजानीयात् ?
आत्मानमरे केन विजानीयात् !

[जिसकी शक्ति से इस सब कुछ को जाना जाता है उसे किसके द्वारा जानें ? अरे ! उस आत्मा को, अपने आप को, किस करण-उपकरण के द्वारा जानें ?]

बुद्धि से परे है तेज, और वह तो तेज का भी तत्त्व है।

"देह में तेज तू तेज में तत्त्व तू,
शून्य में शब्द बन वेद भाखे !
अखिल ब्रह्माण्ड में एक तू श्रीहरि,
नाना बहु रूप में ब्रह्म भासे !
घड़े विविध घाट तो अनेक नाम-रूप हुए,
अन्त में तो हेम का हेम ही रहे !"

कोई ग्रन्थ पढ़ने की जरूरत नहीं रहती—एक नरसी भगत की वाणी हाथ में ले लें तो। किसी भी सन्त की वाणी ले लीजिये—आपको चाबी मिल जायेगी—ईश्वर को पाने की।

जैसे भी हो, मौन होना पड़ेगा। आज के मनुष्य को गर्व है बुद्धि का। उसे लगता है हम विचार के चिमटे में ईश्वर को पकड़ेंगे, स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा अनुभूति के चिमटे में उसे पकड़ लेंगे। किन्तु वह इनकी पकड़ में आता नहीं। क्योंकि वह सर्व में ओतप्रोत सत्ता है, उसे एकदेशी—अनुभूति, शब्द, विचार, में पकड़ा नहीं जा सकता। आप यदि सचमुच ईश्वर को पाना चाहते हैं तो यह कर्ता-भोक्ताभाव छोड़कर सभी इन्द्रियों की गतियों को शान्त होने दीजिये। रोज बैठकर—आधा घण्टा, एक घण्टा अभ्यास कीजिए, कि मुझे कुछ देखना नहीं, कोई अनुभूति नहीं लेनी है, कोई शक्ति नहीं जगानी है, मुझे कुछ भी पाना नहीं है, केवल अकर्म अवस्था में रहना है। शान्ति से बैठ जाइये, विचार आयेंगे—उन्हें देखते रहिये। देखते-देखते मैं देख रहा हूँ—यह भान भी शान्त हो जायेगा। देखने वाला ही शान्त हो जायेगा; वहाँ एक शून्य का साम्राज्य होगा, एक मौन का साम्राज्य होगा। लगेगा मानो निबिड़ निशा में घन अन्धकार में हैं आप। क्योंकि कुछ भी क्रिया नहीं, गति नहीं, प्रयोजन नहीं, दिशा नहीं, वृत्ति नहीं। ऐसी अनुभूतिमुक्त, तनाव-मुक्त शान्त स्थिति में आप केवल अपने 'होनेपन' में रहेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसप्रकार, ईश्वर को पाने के लिये बहिर्मुखी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाइये। दृष्टि अन्तर्मुखी रहे, इसका अभ्यास कीजिये। उसके लिये प्रतिदिन सुबह एवं सन्ध्या (या रात्रि में सोने से पहले) नियमित रूप से समय दीजिये; तब कर्ता-भोक्ताभाव छोड़कर केवल द्रष्टा बने रहिये। यह द्रष्टाभाव भी जब शान्त हो जायेगा, तब शून्य (भीतर का आकाश) खिलेगा। इस शून्य का पर्दा या अवगुण्ठन हटा कर फिर परमात्मा दर्शन देंगे। आत्मा की पहली सृष्टि (प्रथम महाभूत) आकाश है। उस आकाश तक हम अपने प्रयत्न (सब गतियों को शान्त होने का अवसर देने) के द्वारा पहुँच सकते हैं। फिर परमात्मा स्वयं ही दर्शन देते हैं। आत्मा-परमात्मा-प्रभु (जो भी कहें) तो स्वयंप्रकाश हैं सूर्य की तरह; उन्हें कोई अन्य प्रकाशित नहीं कर सकता। बस उन्हें न देखने की दशा हटना ही उनका प्रकाशित होना है। ईश्वर को पाया नहीं जाता, वे स्वयं अनुग्रह करके दर्शन देते हैं। वे शून्य का पर्दा खोलते हैं तब उनका स्वरूप दिखता है हमें, उसमें हमारा कर्तृत्व नहीं होता।

कर्तृत्व का क्षेत्र भौतिक व्यक्त जगत् में है, अव्यक्त अतीन्द्रिय जगत् में भी कुछ कर्तृत्व पहुँचता है। लेकिन अनन्त के यहाँ कर्तृत्व की गति नहीं, वहाँ तो सब गतियों की शान्ति, विसर्जन या शरणागति ही पहुँचती है। अतः सम्पूर्ण समर्पण यानी अनुपाय ही उपाय है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में—

"विसर्जन ही है कर्णाधार।
वही पहुँचा देगा उस पार!"

['लोकनिकेतन', रतनपुर (गुजराज) में दि० १९-११-८८ को हुई प्रश्नोत्तरी सङ्कलित]

प्रभु! दान दीजिये यही। तुम्हारी विस्मृति न हो कभी!
न चाहूं मुक्ति-धन-सम्पदा। सन्त-सङ्ग देना सदा!!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपङ्ग न रहें ! स्वाधीन होने का साहस करें !

— विमला

अपना पूरा समाज मानो अपङ्ग-मानव-मण्डल बन गया है; मनुष्य स्वयं स्वाधीनता से रह नहीं पाता। शरीर में अपङ्गता हो तो उसका उपाय करने के लिए वह व्यक्ति आतुर होता है, अन्यों को भी उसके प्रति सहानुभूति एवं दया होती है; पर मन-बुद्धि की अपङ्गता के लिये क्या किया जाय ?

एक अपङ्गता है राजनीति की। वहाँ भयानक शोषण-अत्याचार चलता है। जनता को उसका ख्याल न आवे इसके लिए बीच-बीच में कुछ राहत-योजनायें बना कर ऐसा भ्रम पैदा किया जाता है मानो सरकार जनता के हित के लिए ही सब कर रही है, किन्तु वास्तव में ऊपरी सहायताओं द्वारा जनता को अधिकाधिक पङ्गु ही बनाया जाता है।

दूसरी अपङ्गता है अर्थनीति की। पिछले तीन सौ वर्षों से अर्थनीति ऐसी चल रही है कि जनता पैसे व पदार्थों के पीछे अन्धी दौड़ में पड़ी है। तकनीकी विज्ञान के नये-नये आविष्कार, अनेक प्रकार के बिजलीचालित व इलॅक्ट्रॉनिक यन्त्र तथा दैनिक उपयोग के साधन निकलते आते हैं कि आज के मनुष्य को लगता है कि ये सब तो जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें हैं। इन्हें इकट्ठा करने को चाहे जैसे अधिक-अधिक पैसा जुटाना, फिर इन वस्तुओं को सम्हाल रखना— यों पदार्थों के संग्रह, परिग्रह और उपभोग में ही आज के मनुष्य को सुख व उन्नति दिखाई देती है। उसमें से फिर स्वच्छन्दता उपजती है जो पहले आदत फिर व्यसन (obsession) बन कर बन्धन बन जाती है। उस वस्तु का अभाव खटकने लगता है। मनुष्य स्वाधीनता गँवा बैठता है। उसमें से दुःख पैदा होता है।

ये तो भौतिक व्यसन-बन्धन हुए। इनसे गहरा और जकड़ रखने वाला होता है मन-बुद्धि के सम्बन्धों का व्यसन। सांसारिक कुटुम्ब-समाज-संस्था आदि के सम्बन्ध असंख्य होते हैं, उस पर से आगे बढ़ने की कल्पना में मनुष्य धर्म-अध्यात्म के नाम पर नये सम्बन्धों के व्यसन खड़े कर लेता है। पहले कुटुम्ब आदि के बिना 'चैन' नहीं पड़ती थी, फिर "उपदेश देने वालों" के बिना 'चैन'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं पड़ती ! उपदेश के सार में निमग्न होकर उसे जीने में जीवन-शक्ति लगाने के श्रम की बजाय आलम्बन को पकड़े रहने में ही मन को सुविधा प्रतीत होती है। मन की चादर में लिपटे रहने में मनुष्य को सुरक्षा लगती है। यह भी अपंगता है। सामान्य रूप से मनुष्य को ये अपङ्गतायें भी पसन्द हैं क्योंकि इनमें सुरक्षा प्रतीत होती है।

मनुष्य का दुर्भाग्य है यह कि उसे स्वाधीनता प्रिय नहीं, बन्धन ही प्रिय हैं, और स्वाधीनता क्या है इसकी सच्ची समझ भी नहीं है। बन्धनों के अनेक रूप हैं; आयाम हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे को बन्धन में रखना चाहते हैं, माता-पिता सन्तान को अपने बन्धन में रखना चाहते हैं। जनता शासकों को और शासक जनता को बाँधना चाहते हैं। दूसरों को बाँधना चाहने वाला खुद भी बन्धन में जकड़ जाता है।"""जिसे बन्धन में लिया हो उसे 'मेरा' कहकर उस पर हक-दावा जमाया जा सकता है, 'अहं-मम' का यह सूक्ष्म पसारा मनुष्य को सुख-रूप प्रतीत होता है। पर वास्तव में यह सुख-सुरक्षा का भ्रम है।

यदि हम स्वाधीनता में जीना चाहें तो ऐसा कोई भी व्यसन नहीं होना चाहिये; पहले के संस्कारों के वश से जो व्यसन चित्त को घेरे हुए हों उनमें से निकलने का साहस करना मनुष्य का पहला पुरुषार्थ है—धर्म है। हम अपनी समझ के चलाये चलें, कोई कहता है—बस इसी नाते कार्य न करें, हमें स्वयं जो उचित जान पड़े वह करें। 'किसी के जैसा' बनने के सपनों में हम खोये न रहें। अवश्य ही अनुभवी गुरुजनों से, सन्तवाणी व चरित आदि के गहरे अध्ययन में से जो समझ हमारे भीतर उगी हो उस समझ के प्रति वफ़ादार रहें। सहजता से अपनी स्फूर्ति से उस समझ को आचरण में लायें। कमल-पुष्प जैसे कीचड़ में से निर्लिप्त रहता हुआ ऊपर उठ आता है, फिर उस पर कितना ही कीचड़-पानी डाला जाय तो वह उस पर ठहरता नहीं, चिपकता नहीं। वैसे अपने पुराने संस्कारों व समाज के कषायों में से हमें निर्लिप्त रहना है। कमल जैसा निरालम्ब आत्मतुष्ट जीवन हो !

अपनी स्वाधीनता हमें स्वयं ही प्राप्त करनी होगी। उसमें कोई भी मदद नहीं कर सकता। जैसेभोजन कोई बनाकर-परोस कर दे सकता है पर उसे भीतर लेना, पचाना उसमें से शक्ति अर्जित करना हमें ही होगा। भोजन की सुगन्ध और रूप पर मुग्ध होकर निहारते रहने भर से शक्ति-अर्जित नहीं होगी।

[शिवकुटी—आबू में सुने प्रवचनों में से सङ्कलित सत्सङ्ग-सुधा]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'यदेतिदुःखं लोके यच्च सुखमुत्तमं त्रिभुवने।
तद् जानीहि कषायाणां वृद्धिक्षयहेतुजं सर्वम्॥'

—तत्त्वार्थाधिगमसूत्र ८.११ की टीका में उद्धृत

[संसार में जो सर्वाधिक दुःख है, और तीनों लोकों में सबसे बढ़कर उत्तम जो सुख है—वह क्रमशः (राग-द्वेषादि) कषायों की वृद्धि और क्षय से उत्पन्न होता है।]

सुख दुःख की छाया है, या दुःख सुख की छाया है। जैसे सफलता की छाया में विफलता पलती है, वैसे ही सुख की छाया में दुःख पलते है; हर्ष की छाया में शोक पलता है। ऐकान्तिक सुख—जिसमें दुःख का स्पर्श न हो संसार में असम्भव है। क्योंकि सुख-दुःख मन की उपज है, ये जीवन के अन्तिम सत्य नहीं, मानसिक स्तर के तथ्य हैं; चित्त की प्रतिक्रियात्मक संवेदनायें हैं; इन संवेदनाओं को अनुभव करने की शक्ति भी देश, काल, परिस्थिति और संस्कार के अनुसार बदलती है।... सुख में, दुःख में, हर्ष में, विषाद में एक प्रकार की उत्तेजना है जो सन्तुलन नहीं रहने देती। उत्तेजना का अर्थ ही है सन्तुलन से विचलित होना; वह स्वास्थ्य नहीं।

[विमलवाणी : 'पावक स्फुलिङ्ग' में से]

भूल-सुधार

पिछले अङ्क में—'नवजन्म के प्रणाम'—लेख में अन्तिम लघुशीर्षक "...पाथेय" में 'माँ का' जोड़ लें। उस लेख का शेषांश किसी को व्यक्ति-सम्बन्धित प्रतीत हो सकता है अतः प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। आगे भी कभी कोई व्यक्ति-सम्बन्धित अभिव्यक्ति प्रकाशित नहीं की जायेगी।—सं०

© प्रकाशक—विमल-प्रकाशन-ट्रस्ट व्यवस्थापिका-सम्पादिका—डॉ० उर्मिला शर्मा

* किसी भी प्रकार का विज्ञापन या प्रचार नहीं *

प्राप्तिस्थान एवं पत्र तथा मूल्यादि भेजने का पता— शिवकुटी, आबू पर्वत 307501 या 'आम्नाय', 209/1 करौंदी डाक का० हि० वि०, वाराणसी ५ २२१००५

वार्षिक मूल्य—रु० २५ मात्र, एक प्रति—रु० ७।डाकखर्च

प्रकाशन—वर्ष में प्रायः चार बार, मुद्रक—तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

कृपया शुल्क M. O. या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजें, चेक नहीं; एवं M. O. के सन्देश-स्थान में प्रेषक का नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महात्मा गांधी ने कहा था

"मेरा मिशन केवल यह नहीं है कि भारत में रहनेवाले मानवों के बीच भाईचारा हो, न मेरा मिशन केवल भारत को आजाद करने का है, यद्यपि आज मेरा सारा जीवन, मेरा सारा समय उसी काम में लगा हुआ है। बल्कि मेरा मिशन है—भारत की आजादी के जरिए दुनिया के सभी मानवों के बीच भाईचारा कायम करने का।

मेरी देशभक्ति कोई संकीर्ण वस्तु नहीं है, वह तो सब को अपने में समाने वाली है, मैं उस देशभक्ति को अस्वीकार करूँगा, जिसमें दूसरे देश के शोषण और उन्हें पीड़ा देने की बात हो। देशभक्ति की मेरी कल्पना सदा ही बिना किसी अपवाद के मानवजाति के व्यापक कल्याण को ही है। केवल इतनी ही बात नहीं है। मेरी देशभक्ति और मेरा धर्म भी जीव मात्र को गले लगाने का है। मैं केवल मनुष्यों के साथ बन्धुता या एकता का अनुभव करना नहीं चाहता हूँ, बल्कि मैं समस्त जीवों के साथ, पृथ्वी पर रेंगनेवाले साधारण जीवों के साथ भी एकात्मता का अनुभव करना चाहता हूँ, क्योंकि हम सभी एक ही ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं, इसलिये सभी प्राणवान् जीव—चाहे वे किसी भी रूप में क्यों न प्रकट हुए हों—मूलतः एक ही हैं।

मेरी अपने मिशन में ऐसी अटूट श्रद्धा है कि अगर यह सफल होता है और उसे सफल होना ही है, तब इतिहास में यह दर्ज होगा कि यह एक ऐसा आन्दोलन था जो कि संसार के सभी लोगों को जोड़ने वाला था; हम एक दूसरे के खिलाफ़ नहीं, बल्कि एक ही पूर्ण के हिस्से हैं, इसका अहसास कराने वाला था।

["यंग इण्डिया" में से उद्धृत]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi